त्यागपत्र (सारांश)
जैनेन्द्र कुमार

P.G.
E.M.-II
Paper-9

सर. एम. दयाल चीफ जज के पद से इस्तीफा देकर हरिद्वार में विरक्त जीवन बिता रहे थे। उनके स्वर्गवास के बाद उनके कागजों में हस्ताक्षर सहित एक पांडुलिपि मिली। जो उनके जीवन के एक अंश का मार्मिक चित्रण करती थी। मूल लेख अंग्रेजी में था, उसका हिंदी अनुवाद प्रस्तुत है।

जज का काम न्याय करना है। मैंने बर्षों कानून की तराजू की मर्यादा को निभाया पर पाप पुण्य की व्याख्या मुझसे न होगी। मेरी बुआ पापिष्ठा थी या नहीं यह कहने का मुझे क्या अधिकार? उनकी मृत्यु की खबर पाकर आज मेरा मन रो रहा है। कौन इस मौत का जिम्मेदार है। क्या हमारे समाज, हमारी परम्पराओं, हमारे हृदयहीन व्यवहार ने ही इन्हें पतन के गर्त में नहीं ढकेला?

बुआ मेरे लिए बहन और सखी के समान थी। वे भी मुझे बेटा भाई और मित्र मानकर अपना स्नेह लुटाती थीं। माता-पिता स्नेह तो बहुत करते थे पर समाजभीरु थे। माता जितनी कुशल गृहणी थीं उतनी ही कठोर शासिका। मातृ-पितृ हीन बुआ को पिता का स्नेह कहीं कहीं बिगाड़ न दे इसका वे खूब ख्याल रखतीं। बुआ स्कूल की सारी शरारतें आकर मुझे बताती। मैं उनका बहुत प्यारा भतीजा था। अचानक बुआ अनमने रहने लगीं। तब वह नवीं या दसवीं कक्षा में होंगी। कक्षा में एक सहेली शीला के यहाँ उनका आना जाना बहुत बढ़ गया। एक दिन उसके घर से लौटने में इतनी देरी हुई कि नौकर भेजकर बुलाना पड़ा। इसके तीन दिन बाद माँ ने बेंत से बुआ की खूब पिटाई की। मैं बहुत छोटा था और कुछ भी समझ न सका लेकिन बुआ की दुखावस्था देखकर मेरा दिल दहल गया। वह दिन था कि बुआ की हँसी मैंने नहीं देखी। इसके पाँच छः दिन बाद बुआ का ब्याह हो गया। ब्याह के पहले बुआ मेरे गले लगाकर खूब रोई। विदाई के समय मैं भी फूट-फूटकर रो पड़ा पर बुआ चली गयी। चार दिन बाद बुआ आयी तो बुझी-बुझी रहतीं। उन्होंने मुझे एक कागज देकर शीला के भाई के पास भेजा। वे बहुत खुश हुए मुझे चॉकलेट दी और बुआ को देने के लिए एक कागज भी दिया। पर कागज लेकर बुआ उदास हो गयीं। उनकी स्तब्धता देखकर मैं घबरा गया। बुआ ने साफ कह दिया कि अगर मैं उनका कोई पैगाम लेकर आया तो वे छत से गिरकर मर जायेंगी। मैं कुछ भी न समझ सका। दो तीन दिन बाद फूफा आए और बुआ को साथ ले गए।

ब्याह के आठ दस महीने बाद अचानक बुआ एक नौकर के साथ अकेली चली आयीं। फूफा को बिना बताए आने के कारण पिताजी काफी नाराज हुए। बुआ गर्भवती थीं। हर

समय उनकी तबियत सुस्त रहती। मैं उनके आने से प्रसन्न था पर उनकी प्रसन्नता जैसे सदा के लिए लुप्त हो गयी थी। मैं तब आठवीं कक्षा का विद्यार्थी था। उनको दुःखी देखकर उनका दुःख जानने की भरसक कोशिश करता पर बुआ बताती ही नहीं थी। एक दिन अचानक बातों-बातों में उन्होंने बताया कि फूफा उन्हें बेंत से पीटते हैं। मैं सन्न रह गया। फूफा मुझे बहुत बुरे लगने लगे। मैं हर कीमत पर उन्हें यहीं रख लेना चाहता था। फिर बाबूजी और फूफा जी में लंबा पत्र व्यवहार हुआ। फूफा के साथ बुआ जाना नहीं चाहतीं थीं पर उन्हें जबरदस्ती भेजा जा रहा था। बुआ की तबियत बहुत खराब थी। कब्ज दूर करने के लिए जमालगोटा मुझी से मँगवाकर खाया था। उसे खाने के बाद हालत ऐसी हो गयी कि मरते-मरते बचीं। लेकिन मैं उन्हें रोक न सका बुआ फूफा के साथ चली गयीं।

इसके बहुत दिन बाद तक बुआ से मिलना न हुआ। मैं कॉलेज में आकर व्यस्त हो गया। बुआ की खबर कभी-कभी आती फिर एकाएक खबर आनी भी बन्द हो गयीं। मैं माँ से बुआ के बारे में पूछता तो वे मुझसे ही बिगड़ने लगतीं। बाबूजी भी कुछ न बोलते घर में बुआ की चर्चा निषिद्ध हो गयी। बहुत दिन बाद जाना कि फूफा ने बुआ को छोड़ दिया है। बुआ मैके आने को राजी नहीं हुई तो उन्हें एक कोठरी में रख आए थे फूफा। अब बुआ का क्या हुआ क्या नहीं, यह जानना भी असंभव था। दिन बीत चले पिताजी का देहान्त हो गया। माँ की सारी आशाएँ मुझ पर थीं। मैं पढ़ने में तेज था। अच्छी पोजीशन लेकर वकालत करना चाहता था। पर बुआ का ध्यान मन में सदा रहता। आजकल जिस शहर में थी उसका नाम एक बार किसी से सुना था। उसी के सहारे मैंने बुआ का खोज निकाला। बुआ शहर के गंदे मुहल्ले की एक गंदी कोठरी में कोयले वाले की रखैल के रूप में रहती थीं। मुझे अचानक देखकर स्तब्ध हो गयीं। पहले तो मुझे देखने, मुझसे बात करने तक को तैयार नहीं थीं पर मैं भी यूँ टलनेवाला न था। मैं उन्हें अपने साथ ले जाना चाहता था पर जाने को तैयार न थीं जिस व्यक्ति ने उन्हें आड़े वक्त में सहारा दिया था आज वे उसे कैसे छोड़ दें? यद्यपि वह यह भी जानतीं थीं कि वह व्यक्ति उन्हें ज्यादा दिन साथ नहीं रखेगा। रूप का जादू उतरते ही भालपत्ता बटोरकर चलता बनेगा। मैं जानना चाहता था कि बुआ ने पति को क्यों छोड़ दिया। वास्तविकता यह थी कि फूफा ने ही बुआ को छोड़ दिया था। विवाह के बाद शीला के भाई का एक औपचारिक पत्र आया। बुआ ने पति को इस निर्दोष प्रेम संबंध के बारे में सच-सच बता दिया। यह सत्य बुआ

को बहुत महँगा पड़ा। फूफा यद्यपि दुहाजू थे, पर पत्नी को विवाहपूर्व प्रेम के लिए क्षमा न कर सके। बुआ का जीना हराम कर दिया। अन्त में एक कोठरी में पटक गए कैसे जिये कैसे रहे इसकी कोई परवाह नहीं की। उस विपत्ति में इस कोयले वाले ने सहायता की। बुआ मैके नहीं आईं। एक बार आकर सबका व्यवहार देख ही लिया था। परित्यक्ता होकर किस मुँह से आतीं। यह व्यक्ति भी बुआ को पराया न लगता। वे पति भाव से ही उसकी सेवा करतीं। पति को छोड़कर आने वाली स्त्री के मुख से पतिव्रत धर्म की बातें विचित्र लग रही थी पर बुआ दृढ़ थीं।

जब उनका एकमात्र आसरा सर्वान्तर्यामी भगवान ही थे और किसी से उन्हें न कोई आशा थी न कोई शिकायत बुआ नहीं आयीं मैं लौट आया। कुछ दिनों बाद एक बार फिर वहाँ गया पर न तो वहाँ बुआ मिली न कोयलेवाला पड़ोसियों से पता चला कि कोयलेवाला अपनी औरत को मारपीटकर भाग गया। और भी कहीं चली गई शायद अस्पताल गयीं थीं। मैंने मिशन अस्पताल में खोज की वहाँ जिनाम और उसकी बच्ची का नाम दर्ज था, पर वह चार महीने पहले की बात थी। अब वे कहाँ हैं कोई नहीं जानता है, मैं निराश लौट आया।

मेरे विवाह की बात चली। लड़की देखने जहाँ गया संयोगवश वहीं बुआ मिल गयीं। वे बच्चों को ट्यूशन पढ़ातीं थी और पास ही एक स्कूल में शिक्षिका थीं। मैंने लड़की के पिता को बुआ के बारे में सबकुछ बता दिया। उन्हें इस संबंध पर कोई आपत्ति न थी पर लड़की की माँ अड़ गयीं। बिरादरी का भी सवाल था। रिश्ता टूट गया। बुआ की नौकरी छूट गयी मैं उन्हें साथ लाना चाहता था पर वे नहीं मानीं एक बार फिर संपर्क टूट गए। मुझे बार बार ऐसा लगता है कि मेरी ही कायरता से बुआ गयीं। मैं खड़ा-खड़ा डूबती को नसीहतें देता रहा। क्यों नहीं उनके साथ ही जीवन समुद्र में कूद पड़ा। शायद मैं संघर्ष से डरता था। बदनामी और लोकनिंदा से डरता था। समाज का भय मेरी अंतर-चेतना में छिपा हुआ था।

जब अन्तिम बार उनसे मिला तब वकील था। बुआ बीमार थी जिस मुहल्ले की कोठरी में पड़ी थीं, वहाँ जाते डर लगता था। इस बार आश्चर्य यह कि बुआ ने मुझे पत्र लिखकर बुलाया था। मेरी माता की मृत्यु का समाचार पाते ही मुझे पत्र लिखा पत्र क्या था - आत्मकथा से उपजा अनुभूति जीवन दर्शन था। इसने मुझे हिला दिया। आजकल बुआ जिस मुहल्ले में रह

रह रही थी वहीं चोर उचक्के और अघोर बस्तियाँ रहती थीं। इस बस्ती के लोग ऊपर से चरित्रहीन और बदमाश लगते थे पर उनके अंतर्मन में सहज स्नेह की धारा बहती थी। उनलोगों ने बुआ को प्रेम दिया, आदर दिया। यद्यपि उनके पास बढ़िया इलाज करने को पैसा न था, पर स्नेह और ममता बहुत थी। सभ्य समाज के दुराचारी कहलाने वाले लोगों के छल कपट से परे थे। जो उनके बाहर था वही उनके भीतर था। वे सबको अपने प्रभुत्व की घोषणा करते थे। मुँह में राम बगल में छुरी वाला हिसाब यहाँ नहीं था। इस वातावरण में मुझे बुलाकर बुआ को भय था कि कहीं वह मेरा प्रेम, मेरी नाराजगी न खो दें। पर फिर भी उन्होंने पत्र लिखा। मैं हर हालत में बुआ को ले जाना चाहता था। पर बुआ अकेली नहीं जाना चाहती थीं। अपनी विपत्ति के इस सब साथियों को संग ले जाना चाहती थीं। यह अनोखा प्रस्ताव भला कैसे माना जा सकता था? मैं समझा बुझाकर नाराज होकर हार गया। एक वकील मित्र को कुछ रुपये देकर बुआ का ख्याल रखने को कहा और खाली हाथ लौट आया। बुआ से मैं बहुत नाराज हो गया। वे मुझे छोड़ सकती थीं पर उनलोगों को छोड़कर आने को तैयार न थीं।

आज सोचकर आश्चर्य होता है कि पिछले सत्रह वर्षों से मैं बुआ को कैसे भूला रहा। वकालत से पैसा बटोरने, पद, ख्याति, जमाने, समाज में प्रतिष्ठा पाने में इस कदर लगा रहा कि बुआ का ख्याल तक नहीं आया। वह बुआ जिन्होंने बिना लिए मुझे अपना निश्छल प्रेम दिया। आज खबर आयी कि वह मर गयी। बुआ तुम्हारे जीते जी मैं राह पर न आया। अब सुनो यह जजी छोड़ता हूँ, मैं तुमसे न्याय न कर सका। अपनी कायरता का दण्ड दूँगा। दूसरों के लिए जीना मैं न सीख सका पर अपने लिए अब उतनी ही स्वल्पता से रहूँगा जितना अनिवार्य है। इसी के साथ सही करते हुए कि जजी से अपना "त्याग पत्र" मैंने दाखिल कर दिया।